अध्याय–प्रथम

शोध परिचय

अध्याय–प्रथम

शोध परिचय

1.0.0 प्रस्तावना–

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली अनवरत क्रिया हैं। बालक अपने आस–पास से प्रत्येक समय कुछ न कुछ सीखता ही रहता हैं। तथा दूसरो को सीखाता हैं। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से सीखते रहते हैं। यह सीखना सीखाना ही शिक्षा हैं। प्रत्येक समय उसका प्रभाव किसी न किसी रुप में अवश्य विद्यमान रहता हैं। जॉन डीवी ने शिक्षा के बारे में कहा है कि शिक्षा बालक की उन समस्त आंतरिक शक्तियो का विकास हैं। जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रख सके तथा अपनी संभावनाओं की पूर्ति कर सके, उनके अनुसार शिक्षा त्रिमुखी प्रकिया हैं जिसमें शिक्षक, विद्यार्थी तथा वातावरण आते हैं।

समाज में मिलने वाली अनौपचारिक शिक्षा, विद्यार्थी में अपना ज्ञान स्वयं सृजित करने की स्वाभाविक क्षमता को विकसित करती हैं। जिससे विद्यार्थी में अपने आस–पास के सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से और विभिन्न कार्यो से जुड़ने की क्षमता बढ़ती हैं। इसके लिये ऐसे मौंको का मिलना बहुत जरुरी हैं, जिससे विद्यार्थी नई चिजों को आजमाएँ, जोड़–तोड़ करे, गलतियॉ करे और अपनी गलतियॉ खुद सुधारे। यह बात भाषा सीखने के लिये भी उतनी ही सच है जितनी किसी हस्तकौशल या विषय को सीखने के लिए। संस्थानो के तौर पर स्कूल सभी विद्यार्थियों को स्वयं के बारे में सीखने के, दुसरो व समाज के बारे में जानने के नए अवसर प्रदान करते है, ताकि वे अपनी विरासत को समझकर उससे जुड़ पाएँ। फिर चाहे उन्होने किसी भी परिवार या समुदाय में जन्म लिया हों। स्कूल औपचारिक शिक्षा की जिन प्रक्रियाओं को संभव बनाता है। वे विद्यार्थियो के जीवन में समझ व दुनिया से जुड़ने की नयी संभावनाए खोल सकती हैं।

बच्चों की आवाज व अनुभवों को कक्षा में अभिव्यक्ति नही मिलती। प्रायः केवल शिक्षक का स्वर ही सुनाई देता हैं। बच्चे केवल अध्यापक के सवालों का जवाब देने के लिए या अध्यापक के शब्दों को दोहराने के लिए ही बोलते हैं। कक्षा में वे शायद ही कभी स्वयं कुछ करके देख पाते हैं। उन्हे पहल करने के अवसर भी नही मिलते हैं। किताबी ज्ञान को दोहराने की क्षमता के विकास के

बजाए पाठ्यचर्या बच्चो को इतना सक्षम बनाये कि वो अपनी आवाज ढूंढ़ सके ,अपनी उत्सुकता का पोषण कर सके, स्वयं करे, जॉचे–परखे व अपने अनुभवों को स्कूली ज्ञान के साथ जोड़ सके। इस उद्देश्य से पाठ्यचर्या का पुनर्उन्मुखीकरण हमारी सबसे बड़ी प्राथमिकताओं में से एक होना चाहिए, ताकि अध्यापको के प्रशिक्षण, स्कूलो की वार्षिक योजना, पाठ्यपुस्तकों की रुपरेखा, शैक्षणिक सामग्री व योजनाओं, मूल्यांकन व परीक्षा व्यवस्था में भी बदलाव लाया जा सके।

स्कूल की सीमाओं को समाज के प्रति अधिक उदार होना होगा। साथ ही पाठ्यचर्या का बोझ और परीक्षा संबंधी तनाव के सभी आयामों पर तत्कालिक ध्यान देने की आवश्यकता हैं। प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्कूल और उसके बाद भी शारीरिक एवं भावनात्मक सुरक्षा हर प्रकार के सीखने की आधारशीला हैं।

बच्चों के संज्ञान में अध्यापकों की भूमिका भी बढ़ सकती हैं यदि वे ज्ञान निर्माण की उस प्रकिया में ज्यादा सकिय रुप से शामिल हो जाएँ जिसमें बच्चे व्यस्त हैं। सीखने की प्रकिया में व्यस्त एक बालक या बालिका अपने ज्ञान का सृजन खुद करता/ती हैं। बच्चों को ऐसे प्रश्न पूछनें की अनुमति देना जिनसे वे स्कूल में सिखाई जाने वाली चीजों का संबंध बाहरी दुनिया से स्थापना कर सकें। उन्हे एक ही तरिके से उत्तर रटने और देने की बजाए अपने शब्दो में जवाब देने और अपने अनुभव बताने के लिए प्रोत्साहित करना – ये सभी बच्चों की समझ विकसित करनें में छोटे किन्तु बहुत महत्वपूर्ण कदम हैं। 'चतुर अनुमान' को एक कारगर शिक्षाशास्त्रीय साधन के रुप में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। अपने रोजमर्रा के जीवन या 'मीडिया एक्सपोजर' से प्रायः बच्चों को एक बोध तो होता हैं, लेकिन वे उसे उस प्रकार मुखरित नहीं कर पाते जो शिक्षक को पसंद हो। जो हम जानते हैं और जो लगभग जानते हैं के बीच के क्षेत्र में नए ज्ञान का सृजन होता हैं। प्रायः ऐसा ज्ञान कौशल का रुप ले लेता हैं जो स्कूल के बाहर घर अथवा समुदाय में परिष्कृत होते हैं। ऐसे सभी प्रकार के ज्ञान व शिल्पों का आदर होना चाहिए। एक संवेदनशील और समझदार अध्यापक यह जानता हैं और बच्चो को भली–भांति चुने हुए कार्यो व प्रश्नों में व्यस्त कर पाता है, ताकि वे अपने विकास की क्षमता का अनुभव कर सकें।

अतः प्रायः 'वस्तुपरक' होने के नाम पर अध्यापक लचिलेपन और रचनात्मकता की बलि दे देता हैं। प्रायः निजी व सरकारी दोनो स्कूलो के अध्यापक इस बात पर जोर देते हैं कि सभी बच्चों को प्रश्नों के एकसमान उत्तर देने चाहिए। अन्य उत्तरो को स्वीकार न करते के लिए यह तर्क दिया जाता है कि 'वे ऐसा उत्तर नही दे सकते जो पाठ्यपुस्तक में नही हैं' या 'हमने अध्यापक कक्ष में इसकी चर्चा की और और निश्चय किया कि हम केवल इसी उत्तर को सही मानेंगे' या फिर 'इस प्रकार तो बहुत सी किस्म के जवाब होंगे' क्या हमें सभी तरह के जवाबों को सही मानना चाहिए ? 'ऐसे तर्क पढ़ाई के तर्क का उपहास बना देते है और बच्चों व माता–पिता को और भी आश्वस्त कर देते हैं कि स्कूल अतार्किक रुप से सख्त हैं। हमें वाकई इस बात पर सोचना चाहिए कि हम हमेशा बच्चों से सवाल के जवाब देने के लिए ही क्यों कहते है।। दिए गए उत्तरो के लिए प्रश्नों की एक सूची बनाना भी सीखने का वैध परीक्षण हो सकता हैं।

शैक्षिक कार्य की गुणवत्ता उससे सीख पाने की योग्यता और विद्यार्थी के लिए उसकी महत्ता को प्रभावित करती हैं। वे अभ्यास जो बहुत सरल होते हैं या बहुत कठिन जो बार–बार एक ही बात यांत्रिक रुप से दोहराते हैं ,जो पाठ्यपुस्तक को याद करने पर आधारित होते हैं जो बच्चे को आत्माभिव्यक्ति व प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं देते शिक्षक के जॉच कार्य पर ही निर्भर रहते हैं। वे बच्चे को आज्ञापालन करने वाली निष्क्रिय कठपुतली बना देते हैं। शिक्षार्थी अपने विचारों व विवेक को महत्व देना नहीं सीखते हैं। वे यह सीखते हैं कि ज्ञान दूसरों के द्वारा बनाया जाता हैं और उन्हे सिर्फ ज्ञान को ग्रहण करना चाहिए। इसीलिए अध्यापकों पर यह जिम्मेदारी आ जाती हैं कि जो बच्चे स्वाभाविक रुप से शिक्षा के प्रति उत्साहित नहीं लगते उन्हे वह प्रोत्साहित करें। शिक्षार्थी नियंत्रित होना स्वीकार कर लेते हैं और यह चाहने लगते है कि उन्हें नियंत्रण में रहना आए। यह अंततः संज्ञानात्मक आत्म–चिंतन और उस लचीलेपन के विकास के लिए हानिकारक हैं जो दरअसल अधिगम से विद्यार्थी को सशक्त बनाने के लिए आवश्यक हैं। इस शैक्षिक वातावरण में बढ़ते हुए कई विद्यार्थी सातवी कक्षा तक पहुँचते–पहुँचते आत्मविश्वास स्वयं को अभिव्यक्ति करने और स्कूली अनुभवों का अर्थ निकालने की क्षमता खो बैठते हैं। वे बार–बार परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए उसी यांत्रिक रटन्त विद्या का सहारा लेते हैं।

जबकि स्वतंत्र विचार प्रक्रिया और हल करने के विविध तरीकों को प्रोत्साहित करने वाले चुनौतीपूर्ण कार्य शिक्षार्थियों में स्वतंत्रता रचनात्मकता और आत्मानुशासन को प्रोत्साहित करते हैं। 'क्विज' संस्कृति को बढ़ावा देने के बदले जहॉ तत्काल सही जवाब जानना जरुरी होता हैं। हमें विद्यार्थियों को गहन गहन व सार्थक अधिगमन पर समय व्यतीत करने देना चाहिए।

सीखने के वे कार्य जो यह सुनिश्चित करते के लिए रचे गए हैं कि बच्चे पाठ्यपुस्तकों के अलावा अन्य स्त्रोंतो से भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित होंगे, इस दर्शन को संप्रेषित करते हैं कि बच्चे खुद ही खोज करके एवं प्रमाण जुटा के सीखते हैं एवं ज्ञान का सृजन करते हैं और अध्यापक या पाठ्यपुस्तक का ज्ञान पर प्रभुत्व नहीं होता हैं। बच्चे अपने खुद के अनुभवों से घर एवं समुदाय के सदस्यों के अनुभवों से पुस्तकालयों से और स्कूल के बाहर अन्य स्त्रोंतो से ज्ञान तलाश कर सकते हैं।

बाल–केंद्रित शिक्षाशास्त्र का अर्थ हैं बच्चों के अनुभवों, उनके स्वरों और उनकी सक्रिय सहभागिता को प्राथमिकता देना। इस प्रकार के शिक्षा–शास्त्र में बच्चों के मनोवैज्ञानिक विकास व अभिरुचियों के मद्येनजर शिक्षा को नियोजित करने की आवश्यकता होती हैं। इसलिए शिक्षा की योजना ऐसी हो कि वह विशेषताओं व जरुरतो की विशाल विविधताओं के तहत भौतिक, सांस्कृतिक व सामाजिक प्राथमिकताओ को संबोधित करे। हमारे स्कूल के शैक्षिक अभ्यास, सिखाने के कार्य और विद्यार्थियों के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तके, उनके समाजीकरण और उनके सीखने में ग्रहणशीलता के गुण पर केंद्रित होते हैं। जबकि हमें उनकी सक्रियता व रचनात्मक सामर्थ्य को पोषित और सवंर्द्धित करना चाहिए – उनके दुनिया के वास्तविक तरिके से संबंध बैठाने, दूसरो से जुड़ने की उनकी मूल अभिरुची या अर्थ ढूंढ़ने की जन्मजात रुचि, को पोषित करना चाहिए। सीखना उपने आप में एक सक्रिय व सामाजिक गतिविधि हैं। प्रायः 'अच्छे विद्यार्थी' की जिस धारणा को प्रोत्साहित किया जाता हैं उसमें अध्यापको की आज्ञा का पालन, नैतिक चरित्र और अध्यापक के शब्दो को 'आधिकारिक' ज्ञान की तरह स्वीकारना शामिल हैं।

पाठ्यचर्या का वर्तमान सरोकार बच्चों को सार्थक अनुभव देने वाली तथा समाहित करने वाली शिक्षा प्रदान करने का हैं। पाठ्यपुस्तक संस्कृति से दूर हटने का प्रयास भी हैं जिसके लिए यह भी जरुरी होगा कि हम विद्यार्थियों व

सीखने की प्रकिया के बारे में जो साचते है उसमें मुलभूत बदलाव लाएँ। अतः बाल–केंद्रित शिक्षा के तात्पर्य व निहितार्थ को गहराई से देखने की आवश्यकता हैं।

शिक्षक की भूमिका–

- ज्ञान के भंडार के रुप में
- मार्गदर्शक के रुप में
- सहायक के रुप में
- प्रभावशाली व्यक्तित्व
- फेसीलीटर के रुप में
- गार्डनर के रुप में
- प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए
- नये ज्ञान उपलब्ध कराने में
- समस्या समाधान में

सुश्री एश्टन वारनर ने अध्यापक की पद्धति की खोज की उसे उन्होने सहज अध्यापन पद्धति कहा हैं। जिसके अनुसार रचना का अर्थ हैं, निर्माण करना और सहयोगपूर्वक निर्माण करने का मतलब है, एक शांति सम्पन्न समुदाय की बुनियादें रखना।

वाटनर ने यह समझ लिया कि अध्यापन एक आंतरिक प्रकिया हैं। वे अध्यापक से अपेक्षित दृष्टिकोण को परिभाषित करती हैं। अध्यापक में नकारात्मक क्षमता होनी चाहिए और अध्यापन की एक प्रभावी पद्धति का व्यावहारिक प्रदर्शन करती हैं। अध्यापक में बच्चो की बाते सुनने ध्यान देने और तब तक इंतजार करने की धीरज व बुद्धिमत्ता होनी चाहिए जब तक कि हर बच्चे की अपनी सोचने का तर्क सामने न आ जाए।

1.1.0 गणित शिक्षा–

कक्षा पहली से आठवी तक की आरंभिक शिक्षा को आजकल अनिवार्य शिक्षा की अवधि के रुप में स्वीकार किया गया हैं। क्योंकि सांवैधानिक संसोधन ने शिक्षा को बुनियादी अधिकार में शामिल कर दिया। इस चरण में शुरुआत में बच्चे का पढ़ने ,.लिखने और अंकगणित से औपचारिक परिचय होता हैं और इस

चरण का अन्त जैविक–भौतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान जैसे विषयो के औपचारिक परिचय से होता हैं आठ सालों की यह अवधि वह समय हैं जब महत्वपूर्ण संज्ञानात्मक विकास होता है और विवके को आकार मिलता हैं। सामाजिक कौशलों और बुद्धि एवं काम के लिये जरुरी कौशलो और अभिवृतियों का भी विकास होता हैं।

राष्ट्रीय पाठयचर्या की रुपरेखा 2005 के अनुसार

गणित की अपनी विशिष्ट अवधारणाएँ होती है जैसे– मूलांक, वर्गमूल, भिन्न, पूर्णांक आदि–आदि। उसकी भी वैधता निर्धारण की अपनी प्रकिया होती हैं, जैसे कि जो सिद्धांत स्थापित किया जाना है उसका कदम–दर–कदम प्रदर्शन। गणित में पुष्टिकरण की प्रकिया कभी आनुभविक नहीं होती है और न ही अवलोकन या प्रयोग पर आधारित होती हैं। वह तो उस संचेतना के अंदर मौजूद उपयुक्त परिभाषाओं एवं स्वयंसिद्ध सिद्धांतों के आधार पर एक प्रदर्शन होता हैं।

गणित की ही तरह विज्ञान की भी अपनी अवधारणाएँ होती हैं। बहुधा वे सिद्धांतों के माध्यम से एक दूसरे से संबद्ध होते हैं और प्राकृतिक विश्व की व्याख्या करने का प्रयास करते हैं। अवधारणाओ में अणु, चुम्बकीय क्षेत्र, कोशिका और न्यूरॉन आते हैं। वैज्ञानिक परख में सैद्धांतिक आधारो पर की गई घोषणाओं को परीक्षण के आधार पर वैध ठहराव जाता हैं जिनमें अक्सर उपकरणो और नियंत्रण की सहायता ली जाती हैं। सिद्धांत निर्माण और मानकता तय करते हुए कभी–कभार गणितीय परीशुद्धता की आवश्यकताये पड़ती है लेकिन केवल निरीक्षण परीक्षण के स्तर पर ही। यहा प्रयास किया जाता है कि ऐसा आख्यान तैयार हो जो किसी तरह से यथार्थ के सदृश्य हो।

गणित की शिक्षा का मुख्य उदेश्य बच्चे की गणितीयकरण की क्षमताओं का विकास करना हैं। स्कूली गणित का सीमित लक्ष्य है लाभप्रद क्षमताओ का विकास विशेषकर अंक ज्ञान संख्या से जुड़ी क्षमताएं– सांख्यिक संकियाएँ–माप–दशमलव व प्रतिशत उच्च लक्ष्य हैं। बच्चे के साधनों को विकसित करना ताकि वह गणितीय ढ़ंग से सोच सके व तर्क कर सके। इसके अंतर्गत चीजो को करने और समस्याओं को सूत्रबद्ध करने व उनका हल ढूढने की समता का विकास करना आता हैं।

इसके लिए ऐसी पाठयचर्या चाहिये जो महत्वाकांक्षी हो सुसंगत हो और गणित के महत्वपूर्ण सिद्धांतो को पढ़ाए। इसे महत्वकांक्षी इस अर्थ मे होना चाहिये कि वह उपरोक्त उच्च लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास करे न कि केवल सीमित लक्ष्य की प्राप्ति का। इसे सुसंगत होना चाहिए ताकि टुकड़े–टुकड़े में उपलब्ध विभिन्न प्रणालियॉ व शिक्षा एक क्षमता में ढ़ल सके जो माध्यमिक कक्षा में आने वाले विज्ञान व सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र की समस्याओं को भी संबोधित कर सकें। चुकिं गणित माध्यमिक स्कूल तक एक अनिवार्य विषय हैं। अत अच्छी गणित शिक्षा का अधिकार प्रत्येक बच्चे को हैं।

1.2.0 अध्ययन की आवश्यकता

बालक के स्वयं के अनुभव को कक्षा मे लाना तथा उसे स्कूली या किताबी ज्ञान से जोडना आवश्यक होता हैं। बालक सामाजिक वातावरण मे बहुत कुछ सीखता हैं पुस्तकीय शब्दो को समझने मे कठिनाई हो सकती हैं किन्तु प्रत्यक्ष ज्ञान जो की आस– पास के वातावरण अनुभव के द्धारा प्राप्त होती हैं। वह अधिगम को अधिक सरल व सहज बना देता हैं पढाई को सरल प्रणाली में मुक्त करना तथा ज्ञान को स्कुल के बाहरी ज्ञान से जोडना । अधिकांश अधिक बच्चो के ज्ञान को प्राथमिकता देना आवश्यक हैं। कक्षा मे केवल अध्यापक का स्वर सुनाई देता हैं। बच्चे केवल शिक्षक के सवालो का हि जवाब देने या दुहारने के लिए बोलते हैं। कक्षा मे वे शायद कभी स्वयं कुछ करके देख पाते हैं उन्हे पहल करने के अवसर भी नही मिलते किताबी ज्ञान को दुहाराने कि क्षमता के विकास के बजाय पाठ्यचर्या बच्चो को इतना सक्षम बनाये कि वे अपनी आवाज ढुंढ सके , अपने उत्सुकता का पालन कर सके ,स्वयं करे ,सवाल पुछे ,जाचे परखे और अपने अनुभव को स्कुली ज्ञान को जोड सके । पूछताछ, अन्वेषण, प्रश्न पूछना, वाद–विवादए व्यवहारिक प्रयोग व ऐसा चिंतन जिससे सिद्धांत बन सके और विचार/स्थितियों की रचना हो सके ये सभी बच्चों की सक्रिय व्यस्तता को सुनिश्चित करते हैं। स्कूलो द्वारा ऐसे अवसर प्रदान किए जाने चाहिए ताकि बच्चे प्रश्न पूछ कर और चर्चा एवं चिंतन कर अवधारणाओं को आत्मसात करें या नए विचार रचें। इस प्रक्रिया के जरिए विभिन्न अवधारणाओं एवं कौशल सीखने के लिए व स्थियों तक पहुचने के लिए बच्चो की सक्रिय भूमिका को चुनौती का तत्व निर्णायक हैं। एक विशेष आयु–वर्ग के लिए सरल व रोचक हो सकता है और किसी अन्य आयु–वर्ग के लिए कतई परोक्ष और उबाउ।

बच्चें उसी वातावरण में सीख सकते हैं जहॉ उन्हे लगे कि उन्हे महत्वपूर्ण माना जा रहा हैं। हमारे स्कूल आज भी सभी बच्चो को ऐसा महसूस नही करवा पातें। सीखने का आनंद व संतोष के साथ रिस्ता होने की बजाए भय अनुशासन व तनाव से संबंध हो तो यह सीखने के लिए हितकारी होता हैं। आज यह आवश्यक हैं कि हमारे सभी बच्चे यह महसूस करे कि वे सभी, उनका घर, उनका समुदाय, उनकी भाषा और संस्कृति महत्वपूर्ण हैं। इन्हे अनुभव के ऐसे संसाधनो के रुप में देखा जाए जिन्हे विद्यालय में जॉचा तथा विश्लेषित किया जाना हैं। उनकी विविध क्षमताओं को मान्यता मिले; यह माना जाए कि सभी बच्चों में सीखने की क्षमता है और सभी की ज्ञान एवं कौशल तक पहुंच हो और वयस्क समाज उन्हे सबसे अच्छा करने के याग्य माने। ज्यों–ज्यों हमारे स्कूल का विस्तार हो रहा हैं और ज्यादा संख्या में समाज के सभी वर्गो के बच्चो को हम उनमें शामिल कर रहे हैं हम उन आवश्यकताओ की महत्ताओ के प्रति अपेक्षाकृत अधिक जागरुक हो रहे हैं। दोपहर का भोजन ढ़ॉचागत सहायता और समावेशी शिक्षा के शिक्षाशास्त्रीय सरोकार वर्तमान में होने वाले सबसे महत्वपूर्ण विकासात्मक बदलाव में से हैं।

शिक्षक ही ज्ञान के स्त्रोंत का प्रमुख आधार नही माना बल्कि बालिक के वातावरण व व्यवहार दोनो ही प्रमुख हैं। बच्चों को स्वाभाविक रूप से सीखने वालो की तरह पहचाने जाने की आवश्यकता और बच्चों की अपनी गतिविधियो के फलस्वरूप पैदा होने वाले ज्ञान को स्थापित करता हैं आम दिनचर्या मे विद्यालय से बाहर हम बच्चों कि जिज्ञासा खोज व लगातार प्रश्न पुछने कि प्रकृति का आनंद लेते हैं। बच्चे अपनी आसपास की दुनिया से बहुत ही सकिय रूप से जुडे रहते हैं, खोजबीन करते हैं। प्रतिक्रिया करते हैं चीजो के साथ कार्य करते हैं। चीजे बनाते और अर्थ गढते हैं। बचपन विकास और निरंतर बदलाव कि अवस्था हैं। जिसमे शारिरिक एवं मानसिक क्षमताओ का पुर्व विकास शामिल होता हैं। जिसमे बच्चा संसार का ज्ञान ग्रहण करता हैं। और नए ज्ञान का सृजन भी करता हैं। बच्चे अपने आप को दुसरो से जोड कर देखना सिखता हैं। जिससे उसकी समझ बनती हैं। वह कार्य कर पाता है।और रूपातरित कर पाता हैं अधिकाशंत स्कुलो मे व्याख्यान विधि प्रश्नोत्तर तकनीक एवं चर्चा का प्रयोग किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त कक्षा मे बच्चों के अनुभवो को लाना तथा उसे पुस्तकीय ज्ञान से जोड़ना ज्यादा प्रभावित होगा।

समाज में मिलने वाली अनौपचारिक शिक्षा विद्यार्थी में अपना ज्ञान स्वयं सृजित करने स्वाभाविक क्षमता को विकसित करती हैं। सभी बच्चे स्वाभाव से ही सीखने के लिए प्रेरित रहते हैं उनमें सीखने की क्षमता होती हैं। विद्यार्थी के संदर्भ में रखना। शैक्षिक अनुभव की रुपरेखा बनाना। विद्यार्थी के पुराने अनुभव को नये ज्ञान से जोड़ना। student ownership learning को प्राथमिकता देना। बच्चे स्कूल में प्रतिदिन अपने आस–पास की दुनिया के अनुभव लेकर आते हैं उनके इस अनुभव का प्रयोग करना। विद्यार्थी को अनुभव के आधार पर पुस्तकीय ज्ञान को जोड़ना।

प्रयोगकर्ता द्वारा शोध का चयन करने का मुख्य उद्देश्य रचनावाद उपागम से विद्यार्थियों में स्वाभाविक प्रवृति का विकास करना। उन्हे ज्ञान निर्माण का अवसर उपलब्ध करना तथा शिक्षक को एक मार्गदर्शन प्रदान करना बच्चों में तर्कशक्ति का विकास हो सके जो कि गणित विषय से अधिक संभव हो सकता है तथा शिक्षक को रचनावाद उपागम से पढ़ाने के तरिको से प्रेरित कर सकते हैं। तथा रचनावाद उपागम को पाठ्यक्रम निर्माण में स्थान दिया जाए। गणित एक ऐसा विषय हैं जहा पर विषय वस्तु को रटा नही सकते। बल्कि उसे गतिविधि आधारित शिक्षण, कान्सेप्ट मेपिंग एवं माइन्ड मेप प्रोजेक्ट विधि ,अग्रिम सहायक प्रतिमा एवं रोलप्ले आदि कौशलों की सहायता से ज्यामितीय गणित और परिमेंय व्यंजक आसानी से समझा जा सकता हैं। जो कि स्थायी हो जाता है।

रचनावाद उपागम से शिक्षण प्रक्रियाये, बालकों के अनुभवो को कक्षा में लाना उनमें तार्किक शक्ति का विकास करना, बच्चो की जिज्ञासा खोज व लगातार प्रश्न पूछने की प्रवृति का मौका देना जिसके जिससे बालक का सर्वांगीण विकास सही दिशा में हो सके।

1.2.1 मार्गदर्शक सिद्धांत

हमें व्यवस्थागत मुद्दो पर ध्यान देने व उन्हे नियोजित करते की आवश्यकता हैं जिससे हम उन अनेक अच्छे विचारो को कार्यान्वित कर सके जिनके बारे में पहले भी बात की जा चुकी हैं। इनमें सबसे अहम हैं–

- ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना।
- पढाई रटन्त प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना।
- पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चो को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि वह पाठ्यपुस्तक केंद्रित बनकर रह जाए।
- परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना, और
- एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राजव्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताए समाहित हो।

1.3.0 पारिभाषिक शब्दावली

1.3.1 रचनावाद उपागम

राष्ट्रीय पाठयचर्या की रुपरेखा 2005 के अनुसार–

रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में , सीखना ज्ञान के निर्माण की एक प्रक्रिया हैं। विद्यार्थी सकिय रुप से पूर्व प्रचलित विचारो में उपलब्ध सामग्री / गतिविधियों के आधार पर अपने लिए ज्ञान की रचना करतें हैं (अनुभव)। उदाहरण के लिये यातायात व्यवस्था को पाठ या चित्र या दृश्य सामग्री का उपयोग करते हुए पढ़ाने तथा उस पर विद्यार्थियों में चर्चा कराने से उनमें यातायात व्यवस्था ज्ञान के निर्माण में मदद की जा सकती हैं। आरंभिक निर्मिति (मानसिक चित्रण) सड़क यातायात के विचार पर आधरित हो सकती हैं और ग्रामीण इलाके का कोई विद्यार्थी बैलगाड़ी के इर्द–गिर्द अपने विचार गढ़ सकता हैं। विद्यार्थी दि गई गतिविधियों (अनुभव) के माध्यम से बाह्य यथार्थ (यातायात व्यवस्था) की मानसिक छवि गढ़ सकते हैं। विचारो की रचना एवं पुनर्रचना उनके विकास के आवश्यक लक्षण हैं। उदाहरण के लिए यातायात व्यवस्था पर आरंभिक विचार सड़क यातायात पर निर्मित होगा। और बाद में यह दुसरे प्रकार के यातायात जैसे–समुद्र और वायु यातायात को समाहित करने के लिए विभिन्न गतिविधियों का उपयोग करते हुये पुनर्रचित होगा। विद्यार्थियों को बाद में उपयुक्त गतिविधियों के माध्यम से यातायात व्यवस्था और मानव जीवन/अर्थव्यवस्था के बीच संबंधो के बारे मे बताया जा सकता हैं (कारण प्रभाव) । हालांकि इस ज्ञान

निर्माण की प्रकिया का एक सामाजिक पहलु यह भी हैं। कि जटिल कार्य के लिए आवश्यक ज्ञान समूह परिस्थितियों में निहित होता हैं। निर्मिति यह संकेत देती हैं कि हर विद्यार्थी व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर अर्थ का निर्माण करता हैं अर्थ निर्माण सीखना हैं। रचनात्मक परिप्रेक्ष्य ऐसी रणनीतिया उपलब्ध करवाता हैं जो सबके द्वारा सीखना को प्रोत्साहित करता हैं।

रचनावाद उपागम में विद्यार्थी के स्वयं के अनुभव एवं किताबी ज्ञान के अलावा वातावरण अनुभव भी ज्ञान के स्त्रोत हैं। विद्यार्थियों में संकल्पनाओं एवं घटनाओं का विश्लेषण करने की क्षमता का विकास किया जाता हैं। जिसमें बच्चे क्या, क्यो, कैसे प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ सके। तथा आलोचनात्मक चिंतन का विकास किया जा सके। छात्र के स्वयं के अनुभव को कक्षा में व्यक्त करने का अवसर दिया जाए।

1.3.2 परम्परागत विधि–

ज्यादातर हमारी कक्षाओं में व्याख्यान विधि, प्रश्नोत्तर तकनीक व चर्चा के माध्यम से शिक्षण कार्य किया जाता हैं इसलिए इसे हमने परम्परागत विधि माना हैं।

1.3.3 शैक्षणिक उपलब्धि

वर्तमान समय में व्यक्ति के ज्ञानात्मक विकास के मापन का एक आधार उस व्यक्ति की शैक्षणिक उपलब्धि हैं जो उस व्यक्ति द्वारा लिखित रुप में या मौखिक रुप में अभिव्यक्त की जाती हैं शैक्षणिक उपलब्धि पर व्यक्ति के रहन–सहन के स्तर या उसके विकास की अनुकूलतम स्थिति और सामाजिक आर्थिक स्थिति का प्रभाव पड़ता हैं।

उपलब्धि शब्द का अर्थ होता हैं– प्राप्ति।

एक शैक्षिक उपलब्धि प्रशिक्षण वह है जिसका निर्माण ज्ञान समूह में कौशल मापन के लिए किया जाता हैं– फ्रीमेंन।

1.3.4 तार्किक योग्यता–

बालकों में तार्किक योग्यता अधिक से अधिक समस्या समाधान करने का अभ्यास हैं जिसमें उसकी समस्या समाधान की योग्यता का विकास होता हैं तथा आत्मविश्वास में वृद्धि होती हैं ।

आगमन तार्किक चिंतन – इसके अन्तंर्गत किसी विशिष्ट समस्या को लेकर सामान्य नियम का प्रतिपादन किया जाता हैं , जिसमें नये अधिनियम सामान्यीकरण तथा सिद्यान्तों का प्रतिपादन होता हैं इस प्रकार के चिंतन की प्रकिया विशिष्ट से सामान्य की ओर होती है।

"Ability to formulate a general rule of principle which are can use to objectivity sokve a problem also the ability to plan regulate and control one's own activities."

1.4.0 समस्या कथन–

मध्यप्रदेश के कक्षा 7 के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि तथा तार्किक योग्यता पर रचनावाद उपागम का प्रभाव

1.5.0 अध्ययन के उद्देश्य

1 रचनावाद उपागम की प्रभाविकता का अध्ययन करना–

(अ) कक्षा 7 के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के सन्दर्भ में

(ब) कक्षा 7 के विद्यार्थियों की तार्किक योग्यता के सन्दर्भ में

(स) कक्षा 7 के विद्यार्थियों की रचनावाद उपागम के प्रतिक्रिया के सन्र्दभ में

2 कक्षा 7 के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि पर लिंग व उपागम के अन्तःक्रिया का अध्ययन करना , जब गणित उपलब्धि के पूर्व परीक्षण के अंको को सहचर के रूप में लिए गये

3 कक्षा 7 के विद्यार्थियों की तार्किक योग्यता पर लिंग व उपागम के अन्तःक्रिया का अध्ययन करना , जब गणित उपलब्धि के पूर्व परीक्षण के अंको को सहचर के रूप में लिए गये

1.6.0 अध्ययन की परिकल्पनाऐं

1 कक्षा 7 के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि पर उपागम का कोई सार्थक प्रभाव नही हैं ,जब गणित उपलब्धि के पूर्व परीक्षण के अंको को सहचर के रूप में लिए गये ।

2 कक्षा 7 के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि पर लिंग का कोई सार्थक प्रभाव नही है ,जब गणित उपलब्धि के पूर्व परीक्षण के अंको को सहचर के रूप में लिए गये ।

3 कक्षा 7 के विद्यार्थियों की उपागम और लिंग एवं उनके अन्तःक्रिया का गणित उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नही है ,जब गणित उपलब्धि के पूर्व परीक्षण के अंको को सहचर के रूप में लिए गये ।

4 कक्षा 7 के विद्यार्थियों की तार्किक योग्यता पर उपागम का कोई सार्थक प्रभाव नही है ,जब तार्किक योग्यता पूर्व परीक्षण के अंको को सहचर के रूप में लिए गये ।

5 कक्षा 7 के विद्यार्थियों की तार्किक योग्यता पर लिंग का कोई सार्थक प्रभाव नही है ,जब तार्किक योग्यता पूर्व परीक्षण के अंको को सहचर के रूप में लिए गये ।

6 कक्षा 7 के विद्यार्थियों की उपागम और लिंग एवं उनके अन्तःक्रिया का तार्किक योग्यता पर कोई सार्थक प्रभाव नही है , जब तार्किक योग्यता पूर्व परीक्षण के अंको को सहचर के रूप में लिए गये उपलब्धि के प्रभाविकता का अध्ययन करना ।